दीमक

संस्कारों की रज आस्था आर्द्रता मिलाते ।

तिमिर युक्त पथ पर ही तव मति बल खुल पाते ।

इनसे हो परिवृत्त मार्ग अपना चुनते हो ।

होकर भी दूरस्थ बंधु का स्वर सुनते हो ।। 1 ।।

तिमिर तुम्हें अतिशय प्रिय हो आभा के द्वेषी ।

तुम बहुभोजी सतत सत्व के सफल प्रमोषी ।

श्वेत मात्र है वर्ण कालिमामय अन्तर है ।

घर कर जाते जहां उजड़ता वो ही घर है ।। 2 ।।

एक जननि के पुत्र वही तव है साम्राज्ञी ।

तुम वशवर्ती दास वृत्ति के हो अनुरागी ।

तुम अनुसरण प्रधान सरणि वक्रा भी भाती ।

दीप्त युयुत्सा युक्त सदा रहती तव छाती ।। 3 ।।

तुम्हें न कुछ संकोच निजाश्रय करते भक्षित ।

निज को नित मानते बहुल संख्या से रक्षित ।

तुम मानते स्वकीय अंधता को भी वर हो ।

मृण्मय बनता ढूह तुम्हारा जो भी घर हो ।। 4 ।।

अन्य जीव हैं, जिन्हे अजीवित काष्ठ इष्ट है ।

करते हैं कुछ छिद्र अधिक देते न कष्ट हैं ।

सीमित उनकी क्षुधा, असीमित तृष्णा तेरी ।

नहीं स्वगृह को करते वे मिट्टी की ढेरी ।। 5 ।।

उरग बनाते वहां मुदित हो अपनी वांबी ।

बन जाते हैं आशु स्वघोषित रक्षक स्वामी ।

तुमको है संतोष न तुम उनके भोजन हो ।

हमको क्या है हानि, विदंशित यदि पर जन हो ।। 6 ।।

पीड़ा सह चिरकाल आज यह वट है जागा ।

अब न समझता निज को निर्बल निपट अभागा ।

अब न दीमकों ! तन इसका तुम चुन पाओगे ।

क्षीर बनेगा गरल, न नव गृह चुन पाओगे ।। 7 ।।

देख रहीं षडयंत्र महावट की संतानें ।

देख रहीं तव कृत्य नित्य नव कटु मनमाने ।

वे सपक्ष हैं चंचु युक्त भी, यह मत भूलो ।

नखर विदारण क्षम, मत संख्या बल से फूलो ।। 8 ।।

शिव कुमार मिश्र

09-01-2020, भोपाल